REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 8 | MAY - 2024

कवि पुहकर कृत 'रसरतन' में शैली के स्वरूप का अध्ययन"

राजेन्द्र प्रसाद साकेत
हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. लता द्विवेदी
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी, शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश :

रसरतन कविता के शैली के स्वरूप का अध्ययन करने के लिए हमें कवि जगदीश पुहकर की भाषा, रचना, विचारधारा, और कविता के विभिन्न तत्वों की गहराई में उतारने की आवश्यकता है। पुहकर की भाषा काव्यमय, सुवाद और संवेदनशील है। उन्होंने उच्चतम स्तर पर भाषा के सौंदर्य का उपयोग किया है, जिससे पाठकों को कविता का आनंद और रस मिलता है। रसरतन में पुहकर ने अद्वितीय और विशेष रचनात्मक प्रक्रिया का उपयोग किया है। उन्होंने अलंकारों, छंदों, और विचारों का सफलतापूर्वक संयोजन किया है ताकि कविता गहराई और संवेदनशीलता से भरी हो। पुहकर की कविता में शैली उनकी विचारधारा को प्रतिबिंबित करती है। उनके रचनात्मक कार्य में उन्होंने प्रेम, रसिकता, और अनुभवों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। रसरतन में पुहकर ने रस, अलंकार, छंद, और रचना के साथ खिलवाड़ किया है। उन्होंने इन तत्वों को संयोजित करके एक अद्वितीय कविता रचना की है जो पाठकों को भावनात्मक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध करती है। रसरतन कविता में पुहकर की शैली का अध्ययन हमें उनके कविता के रंगीन, सुंदर, और अनूठे रूप को समझने में मदद करता है। उन्होंने अपने काव्य में विविधता, गहराई, और साहित्यिक महत्व का ध्यान रखा है, जो उन्हें एक उत्कृष्ट कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

मुख्य शब्द – रसरतन, कविता, पुहकर की भाषा एवं साहित्यिक महत्व।

प्रस्तावना –

रसरतन में कवि जगदीश पुहकर ने प्रेम और रसिकता के विषय में विचार व्यक्त किए हैं। वे इस कविता के माध्यम से प्रेम के आनंद को व्यक्त करते हैं, जो मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण और अभिन्न हिस्सा है। कवि उस अद्वितीय अनुभव को साझा करते हैं जो प्रेम के साथ सम्बंधित है, जैसे कि प्रेम के रस का अनुभव, प्रेम की आध्यात्मिकता, और प्रेम की अनंतता। वे व्यक्तिगत अनुभवों, भावनाओं और भावनात्मक अनुभूतियों के माध्यम से प्रेम के गहरे आवागमन को प्रकट करते हैं। कवि का उद्देश्य पाठक को एक संवाद की भावना प्रदान करना है, जिसमें वह प्रेम के अनुभव को समझ सके और उसका आनंद ले सके। उन्होंने प्रेम के अद्भुत और अद्वितीय स्वरूप को व्यक्त करने के लिए अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है, जिससे कविता में रस का उत्कृष्ट अनुभव होता है।

काव्यभाषा का सौष्ठव ही उसे सामान्य भाषा से अलग करता है। सौष्ठव के कारण ही कविता में शब्द और अर्थ का सामान्य व्यापार संवेदना के स्तर पर उतर आता है। जब कवि ध्वनि, लय और गति के सहारे शब्द

और अर्थ के साथ नाँद को भी जोड़ देता है तभी कविता का जन्म होता है। अतः भाषागत सौन्दर्य की विवेचना के लिए भारतीय काव्यशास्त्र में गुण, रीति और वृत्ति शैली पर विचार किया जाता है।

भावों के प्रभावों की व्यंजना का माध्यम शैली है और शैली साहित्यकार की एक वैयक्तिक विद्या है। वह किस प्रकार की शब्द योजना करता है, किस तरह के वाक्यांशो का निर्माण करता है तथा उसकी रचना से कैसी ध्वनि निकलती है। इसका स्पष्टीकरण कवि विशेष की शैली से होता है। कभी–कभी ऐसा होता है कि शैली का एक प्रकार विशेष स्पष्टीकरण कवि विशेष की शैली से होता है अथवा किसी एक साहित्यकार से इस प्रकार जुड़ जाता है कि कवि अथवा लेखक को देखे बिना ही हम यह सोच लेते है कि अमुक्त कवि की या अमुक वर्ण की या अमूक काल के कवियों की यह रचना है।

मध्यकालीन भारतीय प्रेमाख्याने प्रेमाख्यानक परंपरा में एक ओर संस्कृत पुराण, तथा इतिहास और महाकाव्यों का योग है, तो दूसरी ओर उसमें जैन, बौद्ध कथाओं का संगम भी। इन पर लोक कथाओं का प्रभाव भी कम नहीं है। इनकी शैली में चरित काव्यों के तत्व हैं तो फारसी ऐतिहासिक काव्यों के उपादान भी। अनेक प्रकार की जातियों के सम्मिश्रण से इन प्रेमाख्यानकों में कई प्रकार के देशी विदेशी सांस्कृतिक तत्वों का प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है।

विश्लेषण –

कवि पुहकर कृत ‘रसरतन’ को इसी महत्पूर्ण काव्य–परंपरा के अंतर्गत समाविष्ट किया जा सकता है। अतः ‘रसरतन’ की शैली का स्वरूप उसके काव्यरूप, रस, छंद, कथा संयोजन, कथा स्वरूप, कथानक रूढ़ियाँ तथा कथा उद्देश्य आदि तत्वों के अध्ययन के आधार पर जाना जा सकता है।

1. काव्य रूप – काव्य रूप की दृष्टि से ‘रसरतन’ एक महाकाव्य है। इसको महाकाव्य कहने का कारण यह नहीं है कि मध्ययुगीन महाकाव्यों का रूप विकसित तथा परिवर्तित होकर सभी प्रकार की काव्यात्मक कृतियों को समहित करने वाला था अपितु ‘रसरतन’ में संस्कृत महाकाव्यों के रूढ़ लक्षण काफी सीमा तक स्पष्ट लक्षित होते हैं। फिर भी महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर ‘रसरतन’ के विश्लेषण तथा विवेचनोपरांत ही इसे महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है।

संस्कृत काव्यशास्त्रों में महाकाव्य के स्वरूप के अनुसार महाकाव्य में इतिहास अथवा कथा से उद्भूत कथानक तथा नायक क्षत्रिय कुलोत्पन्न देवता अथवा द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुण सम्पन्न, महान् वीर, शक्तिमान्, नीतिज्ञ तथा कुशल राजा होना चाहिए। जिसका उद्देयस चतुर्वर्गफल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति हो, जो अलंकृत भावों और रसों से भरा हुआ और वृहद् आकार का सर्गबद्ध हो। अर्थानुरूप छंद, समस्त लोकरंजता आदि गुणों से भूषित काव्य महाकाव्य की अनिवार्य शर्तें हैं।

इस दृष्टि से कवि पुहकर ने अपने काव्य में जो संकेत दिए हैं, उनसे स्पष्ट है कि कवि पुहकर एक महाकाव्य की रचना करना चाहते थे, उसके लक्षणों को उन्होंने ‘रसरतन’ में यथासंभव ग्रहण भी किया है। कथा की अभिव्यक्ति के माध्यम की दृष्टि से, नायक के चरित्र तथा उसके जीवन के विभिन्न पक्षों की दृष्टि से ‘रसरतन’ को महाकाव्यात्म्क शैली का प्रेमाख्यानक काव्य कहा जा सकता है। इसका आकार वृहद् तथा नौ खंडों में विभाजित हैं नवरसों का परिपाक करना ही कवि का महत् उद्देश्य रहा है। आलंकारिक वर्णन तथा छंद वैविध्य की दृष्टि से ‘रसरतन’ को महाकाव्य की कोटि में रखा जा सकता है।

निष्कर्षतः ‘रसरतन’ पौराणिक महाकाव्यात्मक शैली में रचित एक सफल और उच्चकोटि का प्रेमाख्यान है।

2. रस – कवि पुहकर ने ‘रसरतन’ में नवरसों के विविध रूपों की सृष्टि को ही काव्य का प्रयोजन माना है। इसीलिए उन्होने काव्य का नाम भी ‘रसरतन’ रखा है–

“वहि समुद्र चौदा रतन, मथे असुर सुर सैन।
इति समुद्र नवरस रतन, नाम धरौ कवि तैन।।” [1]

कवि रूपक के माध्यम से इन नवरस नवनीत की उपलब्धि की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए कहता है कि मैंने गुण समुद्र को प्रेम की डोरी बनाकर ज्ञान की मथनी से मथा है–

"गुन समुद्र मंथान ग्यान मंथानिय ढुंढिय।
नेतु हेतु गहि हाथ रतन नव रसमथ कढ्ढिय।।
बागेसुर परसाद प्रगट क्रम क्रम सब दिष्यह।।
अलप बुध्यि कह हेत धीर मुहि दोसन दिज्जह।।
गुरू नाम सुमर पौहकर सुकवि गरूव ग्रंथ आरंभ किय।
रस रचित कथा रसिकनि रूचित रूचिर नाम रसरतन दिय।।"[2]

कवि के अनुसार रस काव्य की आत्मा है। रसों के संपूर्ण भेदोपभेदों को नियोजित करने के लिए ही कवि ने मानों इस काव्य की रचना की है–

"कहूँ वीर वीभस्थ वषांना। रूद्र भयानक अद्भुत आना।।
वरनौ उभै और की प्रीती। अरू सिंगार विरह की रीती।।
विप्रलंभु संभोग सिंगारा। वरनौ उभै और विस्तारा।।
कहूँ–कहूँ करूना रस पावा। कहुं विचार परमारथ गावा।।
हास विलास वरन बहु भाँती। सांति सुनै सोई मन साँती।।
है सब कथा अनुक्रम न्यारे। लेहि बूझ मन बूझन हारे।।
कथा प्रसंग कीन गुन डोरा। नव रस रतन हार हिय जोरा।।
सुनहि सुजान काम मनु ल्यावै। जिमि सुख लहै रॉंक धन पावै।।"[3]

उपरोक्त वर्णित नवरसों में मुख्य रस श्रृंगार है तथा अन्य रस गौण रूप में प्रयुक्त हुए हैं। श्रृगांर रस का भेदोपभेदों सहित विशद् विश्लेषण इस ग्रंथ के अंतगर्त 'श्रृंगार वर्णन' नामक अध्याय में अलग से किया जा चुका है। शेष रसों के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

वीर रस –

"तर जो रहयो हत्थ जँजीर जरे। धन घूमत अंकुस आन घरे।
वरषा जिमि फौज बनाइ तहाँ। मद मैगल उन्नत मेघ जहाँ।।
चपला जिमि खड्ग चमंकि इमं। वरषै बहु बूँदनि तीर जिमं।।
रन रोस तै पौन प्रचंड चलै। वहु वीरन के मन माह मलै।।"[4]

वीभत्स रस –

"लगै षग्ग एकै गिरै सीस टूटै। कहूँ वान सॉंगी दुहुँ आंख फूटै।।
करै एक अर्ध जु अंगु भालं। पियौ रक्त कालीलई ईशमालं।।
परै एक घाइल्ल घूमंत धाई। तिने देष सूरान के चित चाई।।
फटो षोपरी गुंद फैलंत मिंडी। मानौ माथ मारग्ग फूटी दहिंडी।।"[5]

रौद्र रस –

"जुद्ध नाम सुन हौं न डराऊँ। दुहु दिसि आजु अप्छरी पाऊँ।।
जीतौ जुद्ध मदन दल षेदौं। जौर मरौ रविमंडल भेदौं।।"[6]

भयानक रस –

"हसैं षेत दानै लसैं भूम माहीं । फिर देवि गौरा गहै पीउ वाहीं।।
लिए संग वेताल ते दैं ताल ताली। सुरा पान कीनै मनौ मत्तवाली।।
नचैं भूत भैरौ छुटे केस सीसं। करै, जुग्गिनी पान दंभकतं हीसं।।
तहाँ गौरि भरतार डौंरू बजावै। लसै चंद माथै महा सोभ पावै।।"[7]

अद्भुत रस –

"वहुरि पवन अति चलेउ प्रचंडा। भैं वादर सब खंड विहंडा।।
अंबर अवनि अमल भे दोऊ। बहुरि सुभेद न जानिय कोऊ।।
मति सबकीतिहि ठाँव भुलानी। बहुरि अग्नि नहिं देखेउ पानी।
नट विद्या अति आय अपारा। वीजमंत्र बहु विधि बिस्तारा।।"[8]

करूण रस –

''ठाँव ठाँव रोवैं नर नारी। चली छाँड़ सब नगर उजारी।।
रोवत पिता मात ढिग आई। कहत कहा मुहि पढवत माई।।
किहि कारन अत पालन कीना। जनमत क्यों न हमाहल दीना।।
माता–पिता तजी जिय माया। निरदइ दई करै नहीं दाया। ''[9]

हास्य रस –

''प्रति भव घरनि सुंदरी आई। अति अधीन गति मति बिसराई।।
इक रीति घट ल्याई भोरी। इक त्रिय सीस गागरै फोरी।।
अंजनु दियै एक ही नैना। भूली एक कछू एक कहू कह वैरना।।
पति ग्रह त्रिया जिमावन लागीं। तन मन लीन अतन अनुरागीं।।''[10]

वात्सल्य रस –

'कंठ लाय गहवर हिय रोवै। जनु सुत वदन अच्छ जल धोवै।।
वच्छ विछोह धेनु जिमि रंभै। व्याकुल अस्रु पात नहिंथंभै।।
राम चलत कौसिल्या जैसे। घुमि घुमि धरनि परतियन ऐसै।।
अँषियाँ रँहट कुंभ जिमि चाही। भरि–भरि आवै ढरि ढरि जाँही।।''[11]

शांत रस –

''पहुकर वेद पुरान मिल, कीनो यही विचार।
यहि संसार असार में, रामनाम है सार।।
वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम।
प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिबिधि तन तामु।।''[12]

निष्कर्षतः कवि पुहकर कृत 'रसरतन' रस परिपाक की दृष्टि से एक संपन्न एवं समृद्ध काव्य है।

3. छंद

'रसरतन' छंद वैविध्य के अद्भुत प्रयोग का प्रेमाख्यानक काव्य है। जिसमें कवि पुहकर ने पैन धार्मिक अपभ्रंश काव्यों में प्रचलित छंदों की बहुलता और विविधता को स्वीकारा है। छंद संबंधित विशद् विवेचन प्रस्तुत अध्याय में 'छंद विधान' नामक शीर्षक के अतंर्गत किया जा चुका है। यहाँ संक्षेप में इतना कहना ही उचित होगा कि कवि द्वारा निबंधित छंद योजना प्रेमाख्यानकों की सूफ़ी परंपरा में दोहा चौपाई छंद की रूढ़ पद्धति का अनुसरण न होकर कवि पुहकर के छंद संबंधित अद्भुत ज्ञान की ही परिचायक है।

4. कथा संयोजन

कथा संयोजन की दृष्टि से 'रसरतन' को 'दंतकथा' अर्थात् काल्पनिक कथा की श्रेणी में रखा जा सकता है। स्वयं कवि के शब्दों में–

''पहिलै दंत कथा हम सुनी। तिहि पर छंद वंद हम गुनी।।
श्रवनन सुनी कथा कुछ थोरी। कछुवक आपु उकति तैं जोरी।।''[13]

कवि पुहकर ने 'रसरतन' की संपूर्ण कथा का संयोजन अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर किया है। अतः यह एक काल्पनिक आख्यान काव्य है जिसमें घटनाओं का संगठन और कथा का विकास इतने सुचारू रूप से हुआ है कि कहानी के सौष्ठव के साथ–साथ हमें काव्य–सौंदर्य का भी आनंद मिलता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों जैसे रंभा और कल्पता का संयोग–वियोग, प्रेम मार्ग के कष्ट, पुत्र प्राप्ति के लिए पिता की उलझन, परेशानी और प्रयत्न, विदा होती हुई कन्या को स्वजनों–परिजनों आदि की सीख आदि का वर्णन बड़ा स्वाभाविक, मनोहारी एवं मनोवैज्ञानिक रूप में हुआ है।

5. कथा का स्वरूप –

कवि पुहकर ने अपने काव्य 'रसरतन' की कथा के रूप में स्वीकार किया है। स्वयं कवि के शब्दों में–

''पुहकर सुकवि चित्त यह आई। वरन कहौं कछु कथा सुहाई।।
मन दै श्रवन सुनो सुर ग्यानी। इहि विधि कहौ जो प्रेमकहानी।।''[14]

संस्कृत आचार्य रूद्रट ने कथा के स्वरूप का विवेचन करते हुए उसमें कुछ लक्षणों को स्वीकार किया है। उनके अनुसार कथा के आरंभ में देवता और गुरू की वंदना होनी चाहिए। फिर ग्रंथकार को अपना और अपने काव्य का परिचय देना चाहिए। कथा लिखने का उद्देश्य बताना चाहिए तथा सभी श्रृंगारों से विभूषित कन्या लाभ इस कथा का उद्देश्य होना चाहिए–

''श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरून् नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया।।
सानुप्रासेन ततो भूयो लघ्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णक प्रभृतीन्।।
आदौ कथांतरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपन्वितं सम्यक्।
लघुतावत्संधानं प्रकांतकथावताराय।।
कन्या लाभकलां वा सम्यग्विन्यरतसकल श्रृंगारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात्कथामगद्येन चान्येन।।''[15]

कथा की इससे स्पष्ट परिभाषा अन्य मिलना कठिन है। कवि पुहकर ने भी 'रसरतन' की कथा का स्वरूप आचार्य रूद्रट के अनुसार ही नियोजित किया है। कवि ने काव्य के प्रारंभ में अपने आराधनीय देवताओं की वदंना की है। शाहेवक्त की स्तुति की है। छत्र सिंहासन वर्णन में जहाँगीर की प्रशंसा इस बात का प्रमाण है। पुनः कवि ने अपनी वंशावती का परिचय देते हुए अपने जन्म स्थान से भी अवगत कराया है। सम्यक् प्रकार से कथा शरीर का न्यास किया है। बीच में एक संक्षिप्त अंतराल प्रकारांतर कथा का है जब सूरसेन को अप्सराएँ मानसरोवर से उठाकर ब्रह्मकुंड ले जाती हैं। प्रेम तथा श्रृंगार का वर्णन करना ही कवि का अभीष्ट है। कन्या लाभ के महत्त्व को समझते हुए कवि कहते हैं –

''जिहि कारन भव दध्यि मथ्यौ, अरू दुष सह्यौ अपार।
जप तप सो त्रिय पाइ कै, त्रिपिति भये तिहि वार।।''[16]

नायक सूरसेन इस कन्यालाभ को समुद्र मंथन से तुलना करता हुआ कहता है–

''मथ्यौ सिंधु मिलि दानव देवा। बहुविधि करी बहुत विधिसेवा।।
इक इक रतन सबनि मिलि लाये। तेमे रतन चतुर दस पाये।।
कोई विषु लै जु सुधा लै कोई। कोइ गज तुरंग धेनु धन होई।।
काहू कलप तरोवर लीना। नाम नाथ कमला पति कीना।।
मैं प्रभु कृपा प्रसाद तैं, सब पाये इक ठौर।
रत्न चंद रस गेह मम, बाटनहार न और।।''[17]

इसके अतिरिक्त कवि पुहकर द्वारा सोलह श्रृंगार से सुसज्जित इस कन्या का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

''जुवति बृंद मनि गनित गुनन कमला गज गामिनि।
पारजाति परमल सुअगम मनमथ मद कामिनी।।
बिरह व्याघ वरवेध धनुक भृकूटी विधु आननि।
लोचन लोल तुरंग अधर अँमृत रँग बाननि।।
त्रिवलीय संघ विष मान जन कामधेनु सम सील भनि।
गुन नाम सील रंभा कुँवरि सो अंग चतुर्दस अंग बनि।।''[18]

निष्कर्षतः कवि द्वारा नियोजित कथा का स्वरूप संस्कृत काव्यशास्त्रों के अनुकूल है जिसमें कथा के प्रधान लक्षणों का सर्वत्र ध्यान रखा गया है।

6. कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ियों का प्रयोग मध्यकालीन प्रायः सभी प्रेमाख्यानक काव्यों मे दिखाई पड़ता है। इन कथानक रूढ़ियों को 'कथा' नाम से भी अभिहित किया जा सकता है। जब तक कथाएँ लोक–कंठ को अलंकृत करती हैं और उन्हें काव्यबद्ध नहीं किया जाता, तब तक उनकी रूढ़ियों को लोक प्रचलित कहानी की संज्ञा दी

जा सकती हैं किंतु जब किसी भी तत्व का साहित्य में प्रयोग परंपरा–प्रचलित और रूढ़ हो जाता है तो उसे साहित्य–परंपरा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

हिन्दी में सर्वप्रथम डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपने काव्य 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में 'पृथ्वी राज रासो' की कथानक रूढ़ियों का विश्लेषण किया है। उनके अनुसार कुछ रूढ़ियाँ इस प्रकार हैं[19] –

1. कहानी कहने वाला सुग्गा
2. (i) स्वप्न में प्रिया का दर्शन
   (ii) चित्र में देखकर किसी पर मोहित हो जाना
   (iii) भिक्षुकों या बंदियों के मुख से कीर्ति–वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना इत्यादि।
3. मुनि का शाप
4. रूप–परिवर्तन
5. लिंग–परिवर्तन
6. परकाय–प्रवेश
7. आकाशवाणी
8. अभिज्ञान या सहिदानी
9. परिचारिका का राजा से प्रेम और अंत में उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप में अभिज्ञान
10. नायक का औदार्य
11. षड्ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह–वेदना
12. हंस–कपोत आदि से संदेश भेजना
13. घोड़े का आखेट के समय निर्जन वन में पहुँच जाना, मार्ग भूलना, मानसरोवर पर किसी सुंदरी स्त्री या उसकी मूर्ति का दिखाई देना, फिर प्रेम और प्रयत्न।
14. विजन वन में सुंदरियों से साक्षात्कार
15. युद्ध करके शत्रु से या मत्त हाथी के आक्रमण से, या कापालिक की वलिवेदी से सुंदरी स्त्री का उद्धार और प्रेम
16. गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और गणिका–माता का तिरस्कार
17. भरण्ड और गरूड़ आदि के द्वारा प्रिय–युगलों का स्थानांतरकरण
18. पिपासा और जल की खोज में जाते समय असुर–दर्शन और प्रिया–वियोग
19. ऐसे शहर का मिल जाना जो उजाड़ हो गया हो।
20. प्रिया की दोहदकामना की पूर्ति के लिए प्रिय का असाध्य साधन का संकल्प।
21. शत्रु–संतापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना, और फलस्वरूप युद्ध इत्यादि।

कवि पुहकर ने भी अपने काव्य 'रसरतन' में अनेक रूढ़ियों का प्रयोग किया हैं जिनका विवेचन इस प्रकार है–

1. वंध्या दंपति को ईशाराधन या किसी तांत्रिक आदि के वरदान से संतान होना–इस रूढ़ि का प्रयोग कवि पुहकर ने नायक सूरसेन और नायिका रंभा दोनों के जन्म की कथा में किया है। राजा सोमेश्वर और पटरानी कमलावती को शिव आराधना से पुत्र की प्राप्ति होती है। उधर चंपावती नरेश विजयपाल को सिद्ध आज्ञा से चंडीपूजा का उपदेश मिलता है और चंडीकृपा से रंभा नामक पुत्री का जन्म होता है।
2. स्वप्न दर्शन–नायिका रंभा को कामदेव सूरसेन के रूप में स्वप्न दर्शन देकर मोह विद्ध करते हैं और उसी प्रकार रति रंभा के रूप में नायक सूरसेन को स्वप्न दिखाकर आकृष्ट करती है।
3. आकाशवाणी– विरह विद्ग्धा रंभा की अवस्था निरंतर गिरती जाती है तभी उसकी सखियों को संबोधित करके आकाशवाणी होती है कि ''सूरविथा हर होंगे। धैर्य रखों।''
4. अभिज्ञान या सहदानी–बुद्धि विचित्र नामक चित्रकार वैरागर जाकर सूरसेन को रंभा का चित्र दिखलाता है जिसे पहचानकर उसकी उन्मत्तावस्था दूर हो जाती है, उसी प्रकार सूरसेन के चित्र को देखकर रंभा अपने स्वप्नमित्र को पहचान लेती है।
5. स्वयंवर के माध्यम से सूरसेन को बुलाने का उपक्रम किया जाता है।

6. सूरसेन को मानसरोवर के किनारे से उठाकर अप्सराएँ ब्रह्मकुंड ले जाती हैं जहाँ वे उनके साथ अपनी शापित सखी कल्पलता का गंधर्व विवाह की पद्धति से ब्याह रचा देती हैं।
7. अप्सरा नृत्य–सूरसेन अपनी विवाहिता अप्सरा पत्नी कल्पलता से आग्रह करके उसकी सखी अप्सराओं का स्वर्गीय नृत्य देखता है।
8. राजकुमार सूरसेन कल्पलता के प्रेम में रंभा को भूलता नहीं। वह साधुओं से चंपावती का पता पूछकर योगी वेश में चल पड़ता है।
9. सूरसेन की वीना की आवाज से पशु–पक्षी का मोहित होना, चंपावती की नागरिकाओं को विवश कर देना तथा स्वर सम्मोहन द्वारा विपरीत आचरण करना प्रसिद्ध रूढ़ियों का प्रतिपादन हुआ है।
10. शिवपूजा के बहाने नायिका रंभा तथा नायक सूरसेन का मिलन होना।
11. विद्यापति नामक शुक द्वारा उपनायिका कल्पलता के विरह संदेश को चंपावती लेकर आना। पक्षियों द्वारा संदेश भेजने की रूढ़ि का प्रयोग हुआ है।
12. षड्ऋतु एवं बारहमासे की पद्धति में कल्पलता का विरह वर्णन।

उपरोक्त विवेचित डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार कथानक रूढ़ियों तथा 'रसरतन' में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियों में बहुत कुछ साम्य लक्षित होता है, यथा स्वप्न में प्रिय दर्शन, आकाशवाणी, अभिज्ञान या सहदानी, मानसरोवर पर अन्य सुंदर स्त्री के साथ मिलन, विजन वन में सुंदरियों से साक्षात्कार, शुक आदि पक्षियों द्वारा संदेश भेजना तथा षड्ऋतु एवं बारहमासा के माध्यम से विरह वर्णन इत्यादि।

निष्कर्षतः कवि पुहकर ने प्रसिद्ध, अप्रसिद्ध कथानक रूढ़ियों का प्रयोग अपने कथानक में करके न केवल उसके भीतर कौतूहल और चमत्कार की सृष्टि की है अपितु प्राचीन कथानक रूढ़ि–परंपरा को जीवंत बनाए रखने का भी सफल प्रयास किया है।

7. कथा का उद्देश्य –

'रसरतन' की कथा का मुख्य उद्देश्य कन्या एवं नवरसों का परिपाक करना ही है। चूँकि 'रसरतन' की शैली महाकाव्य की शैली से प्रभावित है, अतः कवि इस उद्देश्य से ऊपर उठकर अपनी कृति को सार्थक जीवन के महत् उद्देश्य से भी जोड़ना चाहता है। कवि पुहकर अपने काव्य को मात्र प्रेमकाव्य नहीं रहने देना चाहते वह उसमें जीवन के वास्तविक रूप को भी अभिव्यक्त करना चाहते हैं। ग्रंथ के अंत में अपने इस उद्देश्य की पुष्टि कवि ने इन शब्दों में व्यक्त की हैं–

"पहुकर भव सागर गरूव, निपट गहिर गंभीर।
राम नाम नौका चढ़े, हरिजन लागैं तीर।।"[20]

इस प्रकार 'अभिव्यंजना शिल्प' के विशद् एवं विस्तारपूर्वक विवेचनोपरांत यह कहा जा सकता है कि कवि द्वारा भाषा में अन्य तत्वों का मिश्रण, तद्भव शब्दों का सहज प्रयोग, प्रचलित एवं प्रसिद्ध मुहावरों और कहावतों का लाक्षणिक प्रयोग, आलंकारिक वर्णन, प्रस्तुत तथा अप्रस्तुतों का सबल प्रयोग, बिंबात्मक प्रस्तुति, प्रतीक संकेतों का सुनिश्चित प्रयोग, छंद वैविध्य तथा संपुट शैली का प्रयोग कवि की सुरूचि एवं क्षमता का परिचायक है। कवि का यह अभिव्यंजना सौंदर्य उसके अनुभूति सौंदर्य को अभिव्यक्त करने में पूर्ण रूप से सहायक एवं सक्षम है।

समग्रतः मध्ययुगीन प्रेम, सौन्दर्य एवं अभिव्यंजना शिल्प काव्य परम्परा के संयोजन से कवि पुहकर जी की काव्य कृति हिन्दी साहित्य की दृष्टि से अनुपम धरोहर है।

कवि पुहकर द्वारा रचित 'रसरतन' को भाषा एवं शैली की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि का प्रेमाख्यानक काव्य कहा जा सकता है।

भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर है। मध्य युग में एक और सूफी अथवा अभारतीय प्रेमाख्यानक काव्यों का प्रणयन हुआ तो दूसरी ओर असूफी अथवा भारतीय प्रेमाख्यानक काव्यों का। इसी शुद्ध भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य–परम्परा में जहाँगीर कालीन प्रसिद्ध कवि 'पुहकर' कृत 'रसरतन' प्रेमाख्यानक काव्य का स्थान आता है।

कवि पुहकर कृत 'रसरतन' सहस्रशताब्दियों में क्रमशः विकासमान भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा लोककाव्य में प्रेमगाथा की रूढ़ियों और फ़ारस ईरान की सूफी प्रेमाख्यानक प्रभाव का समन्वयात्मक रूप है

जिसमें प्रेम की अभिव्यंजना, नवरसों का परिपाक, कन्यालाभ तथा जीवन की सार्थकता जैसे महत उद्देश्यों का प्रतिपादन ही कवि पुहकर का प्रयोजन रहा है।

प्रेम, सौन्दर्य और रस के वास्तविक अर्थ को जानने वाला कवि ही। 'रसरतन' जैसे उच्चकोटि के प्रेमाख्यान का प्रणयन कर सकता है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः अनुप्राणित पुहकर कृत 'रसरतन' और 'रसवेलि' का भाव सौन्दर्य, शिल्प

---

[1] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, आदि खंड, छंद सं. 21
[2] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, आदि खंड, छंद सं. 20
[3] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, आदि खंड, छंद सं. 89–92
[4] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, युद्ध खंड, छंद सं. 236–237
[5] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, युद्ध खंड, छंद सं. 250, 251
[6] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, युद्ध खंड, छंद सं. 225
[7] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, युद्ध खंड, छंद सं. 247, 248
[8] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, वैरागर खंड, छंद सं. 282, 283
[9] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, वैरागर खंड, छंद सं. 48, 49
[10] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, चंपावती खंड, छंद सं. 131, 132
[11] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, विजयपाल खंड, छंद सं. 184, 185
[12] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, वैरागर खंड, छंद सं. 350–351
[13] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, आदि खंड, छंद सं. 88
[14] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, आदि खंड, छंद सं. 86
[15] रूद्रट – काव्यालंकार, षोडश अध्याय, श्लोक सं. 20–23
[16] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, स्वयंवर खंड, छंद सं. 326
[17] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, स्वयंवर खंड, छंद सं. 329–331
[18] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, स्वयंवर खंड, छंद सं. 332
[19] सं. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ठ 74–75
[20] सं. डॉ. शिव प्रसाद सिंह – कवि पुहकर कृत रसरतन, वैरागर खंड, छंद सं. 355